कानून के विरुद्ध रेलवे ने बच्चों को काम पर लगाया

फरीदाबाद (म.मो.) न्यू टाउन रेलवे स्टेशन पर रंगाई-पुताई एवं अन्य कार्यों में बाल श्रमिकों के लगाए जाने पर रेलवे अफ़सरों को जवाब देना भारी पड़ रहा है। इस मुद्दे पर हो-हल्ला मचने पर दिल्ली से सहायक श्रम आयुक्त ने फरीदाबाद स्टेशन और न्यू टाउन स्टेशन पर जाकर इस संबंध में जानकारी ली कि कैसे बाल श्रमिकों को काम पर लगाया गया।

इस मामले में रेलवे के अफ़सरों का कहना है कि उन्होंने बाल मज़दूरों को काम पर नहीं लगाया, बल्कि ठेकेदार ने ऐसा किया और अब उससे इस संबंध में सवाल किया जाएगा। उसका ठेका रद्द किया जाएगा। लेकिन सवाल है कि ठेके पर काम देने के बाद रेलवे अधिकारी क्या अंधे हो गए थे कि उन्होंने यह नहीं देखा कि कानून के विरुद्ध बाल श्रमिकों को काम पर लगाया गया है?

क्या इस संबंध में उन्होंने अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं समझी? या वे इतने संवेदनहीन हो चुके हैं कि उन्होंने इस पर ध्यान देने की कोई जरूरत नहीं समझी? लगता तो ऐसा ही है कि उनकी संवेदना इतनी भोथरी हो चुकी है कि वे इस बात को भूल गए कि बच्चों से काम लिया जाना ग़ैर कानूनी है और बच्चों से काम लेने पर सरकार ने सजा का भी प्रावधान किया है। अब सारा दोष ठेकेदार पर मढ़ने के बाद वे खुद को पाक-साफ़ साबित करने में लगे हैं। जहां तक बच्चों से मज़दूरी करवाने का सवाल है, यह सिर्फ़ रेलवे ही नहीं, बल्कि हर जगह हो रहा है। छोटे-मोटे वर्कशॉपों, ढाबों आदि में बच्चों का काम करना आम बात है। इस पर कहीं कोई अंकुश नहीं लगता।

जहां तक श्रम विभाग के अधिकारियों का सवाल है, वे भी अपना कार्य करने की जगह आराम फ़रमाते हैं और मजदूरों के शोषण का मामला आने पर ठेकेदारों अथवा वर्कशॉपों के मालिकों से 'वसूली' करने चल पड़ते हैं। वैसे जहां स्थायी एवं व्यवस्थित रूप से श्रम कानूनों की धज्जियां उड़ाई जाती हैं, वहां उनकी 'मंथली' बंधी हुई है। श्रम विभाग एक तरह से श्रमिकों के शोषण में सहायक विभाग बन गया है। श्रम विभाग के निरीक्षकों को इस बात से कोई मतलब नहीं है कि वे अपने स्तर पर यह देखें कि बच्चों को काम पर कहां-कहां लगाया जा रहा है और इस पर उचित कानूनी कार्रवाई करें। वे तो बस आंखें मूंदे चुपचाप कुर्सियां तोड़ते रहते हैं और 'मंथली' खुद उनके पास चल कर आती है। हां, जहां से 'मंथली' आने में देर होती है या श्रमिकों के शोषण का कोई नया मामला सामने आता है तो वे औद्योगिक प्रतिष्ठानों के मालिकों को कानूनी कार्रवाई की धमकी देने चल पड़ते हैं और काफ़ी 'मोल-भाव' करके नोट अपनी जेब में संभाल कर रख लेने के साथ 'मंथली' भी तय कर लेते हैं। श्रम विभाग के अधिकारियों का ठेकेदारों से सीधा संबंध होता है।

सरकार ने तो बालश्रम के खिलाफ़ कानून बना दिया, पर यह सोचने की जरूरत नहीं समझी कि आखिर बच्चे काम पर क्यों नहीं लगते हैं? क्या कोई जबरन उनसे काम लेता है? भूख की धधकती ज्वाला उन्हें कठिन से कठिन परिस्थितियों में काम करने को विवश करती है। काम करके अपना पेट तो वे किसी तरह से भर लेते हैं और जानवरों की तरह जी लेते हैं, साथ ही अपने परिवार की भी थोड़ी बहुत मदद कर देते हैं। अगर इन्हें काम से हटा दिया गया तो भीख मांगने अथवा चोरी करने के अलावा उनके पास कोई विकल्प नहीं रह जाएगा।

इनके बीच लेन-देन का मामला पहले से ही तय होता है। यह शहर पूर्णत: औद्योगिक होने के कारण श्रम विभाग के लिए सोना बरसाने की जगह है। यही कारण है कि यहां लगने के लिए पूरे राज्य के श्रम अधिकारियों में होड़-सी लगी होती है और इसके लिए वे भारी-भरकम चढ़ावा चढ़ाने को तैयार रहते हैं।

जहां तक रेलवे स्टेशन पर बाल श्रमिकों को लगाए जाने की बात है तो इसका शोर-शराबा ज़्यादा इसलिए मच रहा है कि रेलवे एक सरकारी विभाग है और इस विभाग में सरकार द्वारा पारित बालश्रम निरोधी कानून की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं।

लेकिन जहां तक निजी वर्कशॉपों, ढाबों, ईंट भट्टों और अन्य तरह के कार्यों में बच्चों के काम करने का सवाल है, यह धड़ल्ले से चल रहा है। यहां तक कि खतरनाक कामों, जैसे माचिस और पटाखे आदि बनाने वाली फैक्ट्रियों में भारी संख्या में बच्चे कार्यरत हैं और इसके बारे में सरकारी अमलों को अच्छी तरह पता है कि किस तरह अमानवीय परिस्थितियों में बच्चों के श्रम का शोषण किया जा रहा है। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर और भदोही में बच्चों को एक तरह से गुलाम बनाकर कालीन बुनने के काम में लगाया जाता है।

इन जगहों को छोड़ दें तो स्वयं देश की राजधानी दिल्ली में सरकार की नाक के नीचे ढाबों-होटलों और छोटे-बड़े वर्कशॉपों में बच्चों से बाहर-बारह, चौदह-चौदह घंटे काम लिया जा रहा है। कभी-कभी किसी एनजीओ की पहल पर सरकार कुछ बच्चों को 'मुक्त' करा कर इसका मीडिया में ढोल बजवाती है, पर रोटी-पानी का कोई विकल्प नहीं होने के कारण बच्चे फ़िर से काम पर लगने को मजबूर होते हैं।

बच्चों के नियोक्ता कहते हैं कि वे स्वयं बच्चों को ढूंढकर काम कराने नहीं लाते, पर बच्चे और उनके अभिभावक ही उन्हें काम पर रख लेने की चिरौरी करते हैं। बात सच है। जिस देश में 77 प्रतिशत आबादी 20 रुपए रोज़ाना की आमदनी पर मरते हुए जिंदा रहने को मजबूर है, वहां भारी संख्या में बाल श्रमिकों का होना नितांत स्वाभाविक है।

सरकार ने तो बालश्रम के खिलाफ़ कानून बना दिया, पर यह सोचने की जरूरत नहीं समझी कि आखिर बच्चे काम पर क्यों नहीं लगते हैं? क्या कोई जबरन उनसे काम लेता है? भूख की धधकती ज्वाला उन्हें कठिन से कठिन परिस्थितियों में काम करने को विवश करती है। काम करके अपना पेट तो वे किसी तरह से भर लेते हैं और जानवरों की तरह जी लेते हैं, साथ ही अपने परिवार की भी थोड़ी बहुत मदद कर देते हैं। अगर इन्हें काम से हटा दिया गया तो भीख मांगने अथवा चोरी करने के अलावा उनके पास कोई विकल्प नहीं रह जाएगा।

बालश्रम विरोधी अधिनियम जब पारित हुआ था, तभी 'मज़दूर मोर्चा' ने लिखा था कि जब तक भूख की समस्या बनी रहेगी, तब तक बाल मज़दूरी खत्म नहीं होगी। बाल मज़दूरी ऐसी समस्या नहीं है जिसे कानून बनाकर खत्म किया जा सके। यह तो तब तक रहेगी जब तक श्रम के अंतहीन शोषण पर आधारित वर्तमान व्यवस्था मौजूद रहेगी।

पाठक मंच

मज़दूर मोर्चा का नया अंक मिला। ईएसआई अस्पतालों की हालत पर आपने सही लिखा है। इन अस्पतालों का हर जगह ही बुरा हाल है। डेविड हैडली पर छपा लेख यह दिखलाता है कि साम्राज्यवादी किस प्रकार दोहरी चालें चलते हैं और जिस आतंकवाद का वे विरोध करते हैं, उसे पैदा करने में उन्हीं का हाथ होता है। गपशप कॉलम काफ़ी अच्छा लगा। अन्य लेख भी अच्छे हैं। बलराज साहनी पर राजेन्द्र चोपड़ा का लेख बहुत ही अच्छा है और वह बलराज साहनी के व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण पक्ष को उजागर करता है। अन्य समाचार भी सच्चाई को सामने लाते हैं। मज़दूर मोर्चा का हर अंक संग्रहनीय है। इसमें प्रकाशित सामग्री को बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है। इस प्रकाशन के लिए आपको साधुवाद।

- उज्ज्वल कुमार, दिल्ली

मज़दूर मोर्चा का ताजा अंक मिला। ईएसआई अस्पतालों पर आपने जो लिखा है, वह पूरी तरह सच है। अगर राज्य सरकार ईएसआई अस्पतालों का संचालन करने में समर्थ नहीं है तो उसे यह काम छोड़ देना चाहिए और और ईएसआई कारपोरेशन को ही चाहिए कि वह स्वयं सारी व्यवस्था की कमान अपने हाथ में रखे। लेकिन ईमानदारीपूर्वक काम करने वाले हों तो राज्य सरकार भी व्यवस्था का संचालन अच्छी तरह कर सकती थी। यहां तो काम करने की जगह लूट मचाने और बैठ कर समय गंवाने की संस्कृति है। बहरहाल, देखना यह है कि ईएसआई की व्यवस्था में क्या बदलाव आता है। हैडली का सच लेख यह दिखलाता है कि आतंकवाद को बढ़ावा देने में साम्राज्यवादियों, विशेषकर अमेरिका की क्या भूमिका है। आतंकवाद के मसले पर अमेरिका दोहरी चालें चल रहा है। गपशप कॉलम भी अच्छा लगा। इसे चलाते रहें। अन्य लेख भी जानकारी वर्द्धक हैं।

-राजकुमार शर्मा, फरीदाबाद

मज़दूर मोर्चा का अंक मिला। ईएसआई पर आप शुरू से लिखते रहे हैं। ईएसआई अस्पतालों की कुव्यवस्था को उजागर करने में आपके प्रकाशन की विशेष भूमिका है।

ईएसआई में अपवादस्वरूप भले ही कुछ कर्त्तव्यनिष्ठ चिकित्सक एंव स्टॉफ़ हों, पर ज़्यादा कामचोर ही हैं। वैसे ईएसआई अस्पतालों का आधारभूत ढांचा भी बहुत कमजोर है। ईएसआई कारपोरेशन के पास जितना पैसा है, उसमें आधारभूत संरचना को सुदृढ़ बनाया जा सकता था। पर ऐसा क्यों नहीं किया जा रहा है, पता नहीं। ईएसआई मेडिकल कॉलेज का शिलान्यास तो आनन-फानन में तत्कालीन मंत्री महोदय ने करवा दिया था, पर अभी तक निर्माण की दिशा में कोई काम नहीं हुआ है। बलराज साहनी के साहित्यिक अवदान पर राजेन्द्र चोपड़ा का लेख बहुत ही अच्छा है। यह लेख एक महान अभिनेता के व्यक्तित्व के एक नये आयाम को हमारे सामने रखता है। अंक में प्रकाशित दूसरे लेख भी अच्छे लगे।

-राजवीर, फरीदाबाद

मज़दूर मोर्चा का अंक मिला। ईएसआई अस्पतालों की दुर्दशा पर आप बराबर लिखते रहे हैं। इस बार आपने विशेष रूप से इस मुद्दे को उठाया है। सवाल है कि अगर राज्य सरकार के संभाले यह नहीं संभलता तो ईएसआई कारपोरेशन को इसके संचालन का काम स्वयं अपने हाथ में ले लेना चाहिए। पर भ्रष्टाचार के इस जमाने में क्या कारपोरेशन के सभी अधिकारी और कर्मचारी दूध के धुले मिलेंगे? मज़दूरों के पैसे पर चलने वाले और प्रत्येक वर्ष अपनी आमदनी में वृद्धि करने वाले इस कारपोरेशन द्वारा चलाये जा रहे अस्पतालों में मज़दूरों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है मानो उनकी चिकित्सा कर उन पर अहसान किया जा रहा हो।

चिकित्सा भी आधी-अधूरी ही की जाती है, क्योंकि कई तरह की जांचों के लिए मशीनों का अभाव है। यही कारण है कि जिन लोगों की चिकित्सा के लिए जांच की जरूरत पड़ती है, उन्हें बाहर से जांच कराने को कहा जाता है। ऐसे में बीमार मज़दूर यह सोचते हैं कि जब जांच बाहर से करानी है और पैसे खर्च करने हैं तो बाहर ही चिकित्सा क्यों नहीं करा ली जाये। मज़दूरों का यह सोचना गैरवाजिब नहीं कहा जा सकता। ज्योति बसु पर आपने एक अलग ही शैली में श्रद्धांजलि दी है। श्रद्धांजलि देने का यह अंदाज काफ़ी पसंद आया। अन्य लेख भी अच्छे लगे।

-सुभाष चंद्र शर्मा, फरीदाबाद

पेज 1 का शेष भाग

निर्मल यादव को नैनीताल हाईकोर्ट में शपथ दिलाई

निर्मल यादव की जल्दबाज़ी को देखते हुए संजीव ने अपनी पत्नी को फ़ोन किया कि घर में जो 15 लाख रखे हैं उन्हें वह तुरंत निर्मल यादव को पहुंचा दे। रेनू ने अपने मुंशी प्रकाश राम को उक्त रकम देते हुए कहा कि इसे 'निर्मल जी' के यहां दे दे और कहे कि 'दिल्ली से काग़ज़ आए हैं'। अब मुंशी जी जा पहुंचे निर्मलजीत कौर के मकान नं 188, सेक्टर-11 में। समय था शाम के 8.30। प्रकाश राम ने वह बंडल चपरासी अमरीक सिंह को दिया जिसने भीतर जा कर जज साहिबा को बताया कि किसी ने दिल्ली से काग़ज़ भेजे हैं। जज साहिबा के आदेश पर अमरीक सिंह ने बंडल खोला तो सभी दंग रह गए। सभी यानी अमरीक सिंह तथा निर्मलजी कौर के अलावा सुप्रीम कोर्ट के भी एक जज वहां उस समय मौजूद थे। जवाब की प्रतीक्षा में बाहर खड़े प्रकाश राम को तुरंत अमरीक सिंह व संतरी ने हिरासत में लेकर पुलिस के हवाले कर दिया।

इसी दौरान प्रकाश राम ने संजीव बंसल को फ़ोन कर दिया। वह तुरंत समझ गया कि मामला बिगड़ गया है। लेकिन उसने हिम्मत न हारते हुए तुरंत कहानी गढ़ ली कि वह रकम किसी निर्मल सिंह नामक प्रॉपर्टी डीलर को अदा करनी थी जो ग़ल्ती से जज निर्मलजीत कौर के यहां पहुंच गई थी। इसमें पंचकूला के सेक्टर-16 के प्लॉट नंबर 601 की खरीदो-फ़रोख्त बताई गई थी जो तफ़्तीश में झूठी पाई गई। तफ़्तीश में यह भी सामने आया कि निर्मल सिंह को डेढ़ लाख रुपए देने का वायदा करके झूठी हां भरने के लिए तैयार किया गया था, इसमें से 50,000 रुपए की तो अदायगी भी उसे कर दी गई थी।

तफ़्तीश में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह भी निकल कर सामने आया कि निर्मल यादव पर उक्त पुलिस कार्रवाई का कोई असर नहीं था। वह पूरी तरह से निश्चिंत थी। उसने 'अपने' 15 लाख लेने के लिए 14.8.08 को सुबह फ़िर से रविन्द्र को फ़ोन लगाया। रविन्द्र ने बंसल से कहा कि वह तुरंत यादव को रकम की अदायगी करे। इस पर बंसल ने रकम की अदायगी यादव को कर दी।

जानकारों का मानना है कि चंडीगढ़ पुलिस द्वारा बहुत ही बेहतरीन ढंग से की जा रही तफ़्तीश को सीबीआई के हवाले करने के लिए तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश ने इसलिए गवर्नर से सिफ़ारिश की थी कि वहां से शायद निर्मल यादव को कुछ राहत मिल सके। शीशे की तरह साफ़ सुथरी तफ़्तीश में सीबीआई ने भी रविन्द्र सिंह, संजीव बंसल और एक राजीव गुप्ता को भ्रष्टाचार अधिनियम 1988 की धारा 12 का दोषी पाया, वहीं जज निर्मल यादव को इसी अधिनियम की धारा 11 का दोषी ठहराया। इसके अलावा उक्त तीनों को भारतीय दंड संहिता की धारा 120 बी (धारा 193, 192, 196, 199 तथा 200 की रोशनी में) का भी दोषी ठहराया है।

सीबीआई अधिकारी अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि निर्मल यादव क्योंकि हाई कोर्ट जज हैं इसलिए मुकदमा चलाने की राष्ट्रपति से अनुमति पाने हेतु भारत सरकार के पर्सोनेल विभाग सचिव को चिट्ठी लिख दी गई है। नियमानुसार इस सचिव को यह मामला राष्ट्रपति को भेज देना चाहिए था और राष्ट्रपति को भारत के मुख्य न्यायाधीश से लिखित राय लेकर कोई फैसला देना चाहिए था। परंतु मजे की बात यह रही कि इस मामले को राष्ट्रपति भवन भेजने की बजाय कानून मंत्रालय भेज दिया गया।

इस पर मंत्रालय के सचिव ने 12.7.09 को सीबीआई निदेशक को पत्र लिखा कि अटार्नी जनरल ने बताया है कि सारे मामले में रत्ती भर भी सबूत नहीं हैं इसलिए मुकदमा चलाने की कोई जरूरत नहीं है। सवाल यह पैदा होता है कि कानून मंत्रालय के सचिव और अटार्नी जनरल से राय मांगी किसने थी? ये जबरदस्ती की राय, जानकारों के मुताबिक राजनीतिक स्तर पर दिलाई गई थी, जिसके आधार पर सारी तफ़्तीश को ठंडे बस्ते में रख दिए जाने का फ़ैसला हो गया।

लेकिन हाईकोर्ट चंडीगढ़ की बार एसोसिएशन ने आगे बढ़कर बाकायदा सीबीआई की स्थानीय विशेष अदालत में इस फ़ैसले को चुनौती देते हुए मांग की कि मुकदमा चलाने की अनुमति, संवैधानिक तरीके से प्राप्त करने हेतु फ़ाइल राष्ट्रपति को भेजी जाए और राष्ट्रपति ही इस पर कोई अंतिम निर्णय लें न कि मंत्रालय के सचिव एवं अटार्नी जनरल आदि। इसके अलावा बार ने अपनी याचिका में यह भी कहा है कि निर्मल यादव के अलावा बाकी दोषियों पर मुकदमा चलाने के लिए तो किसी भी अनुमति की आवश्यकता नहीं है।

अब विडम्बना देखिए कि एक ओर तो सीबीआई की विशेष अदालत ने बार की याचिका को सुनवाई के लिए दाखिल कर दिया और दूसरी ओर निर्मल यादव को नैनीताल में शपथ ग्रहण करा दी। चोरों की इस जमात में इतना भी सब्र नहीं रहा कि वे याचिका के फ़ैसले का इंतजार कर लें। निर्मल यादव को इन हालात में जज की कुर्सी पर पुन: बैठाने का स्पष्ट संदेश यह जाता है कि जजों को अब रिश्वत लेने में किसी पर्दादारी की भी जरूरत नहीं है।

नक्सलवाद : रास्ता किधर है?

क्या केंद्र सरकार से वार्ता के बाद माओवादियों का ऐसा ही हश्र नहीं हो सकता है? जहां तक सवाल ग्रामीण गरीबों और शहरी मज़दूरों के बीच काम करने का है तो ऐसे कई संगठन हैं जो उनके बीच काम कर रहे हैं, पर संगठन के विस्तार में उन्हें कोई खास सफलता नहीं मिल पा रही है। फ़िर माओवादियों की सैद्धांतिक लाइन भी एकदम अलग है। वे अभी भी व्यवस्था को 'अर्द्ध सामंती-अर्द्ध औपनिवेशिक' मान कर चल रहे हैं, जबकि वस्तु स्थिति में काफ़ी परिवर्तन आ चुका है। यह सच है कि माओवादियों ने सदियों से दबे-कुचले आदिवासियों और गरीब किसानों के हक के लिए संघर्ष किया है और उन्हें जुझारू बनाया है, पर कोई भी समझौता करते हुये उन्हें 'शासन की बंदूक' पर बराबर नज़र रखनी होगी।